कच्छप

भ्रमण कर रहा था समोद मैं जब अर्णव के तीर |
देख रहा था नीलांबर के नीचे नीला नीर |
उडा रहा था अंबर और शिरोरूह शीत समीर |
उग्र उर्मियां थीं बिखेरतीं तट पर फेनिल नीर || 1 ||

एक कूर्म प्रथुकाय वहाँ पर देखा सिकतासीन |
मुझे देख कर भी न हुआ वह वारिधि वारि विलीन |
उसके आनन पर थी आभा अद्‌भुत और नवीन |
लगा नहीं सामान्य कूर्म वह काम्य जिसे हो मीन || 2 ||

मनुजोचित भाषा में करने लगा प्रखर संवाद |
मत समझो मानव तुम मुझको कच्छप जग अपवाद |
पशुवाणी अवगम की पायी तुमने अस्थिर शक्ति |
कांत हुई शायद संसृति को निज विरक्ति अभिव्यक्ति || 3 ||

वक्ता के वपु को न सुधीजन देते अधिक महत्व |
शब्द अर्थ व्यग्यार्थ समझते ले लेते है तत्व |
जो शुश्रूषु है उनके हित यह प्रकृति न रहती मौन |
मात्र प्रेम निर्धारित करता सुनता कितना कौन || 4 ||

निर्मल मानस और धैर्य ही यहाँ बोध के हेतु |
सर्व साथ एकात्म्य भावना से जुडता है सेतु |
निज शब्दों से भरें अहंवादी कल्पित नर श्रेष्ठ |
हठी मूढ द्वेषी लोभान्वित अश्रुत गिरा यह प्रेष्ठ || 5 ||

हे पुनरुक्ति अरुचि कर सर्जन का है कोष अशेष |
अत: सृष्टि की हर रचना मैं दिखता तत्व विशेष |
प्रवहमान संसृति सरितावत धृत क्षण-क्षण नवरूप |
वही मूढ जो निज को माने अंतिम श्रेष्ठ स्वरूप || 6 ||

वर्धित धी हो पर खो दी है षष्ठेंद्रिय की शक्ति |
ह्रासोन्मुख विवेक हो बैठे धृत विकास अनुरक्ति |
सकल सत्वगण निज सुख-साधन जो बैठा हो मान |
उस नर से उत्थित होती बस जग आपदा महान || 7 ||

नक्षत्रों की संख्या से भी पॉच अधिक तव दंत |
विरद वदन हम सौम्य तुम्हारी हिंसा वृत्ति अनंत |
इतर जंतु दो अधिक तुम्हारे नख पूरे है बीस |
क्या विस्मय जो पर पीडन में पशु से पडते बीस || 8 ||

तुम नवीन आगंतुक वसुधा पर अतएव न ज्येष्ठ |
प्रकृति रमणि सौंदर्य विरूपण रत अतएव न श्रेष्ठ |
वही प्रवर जिसके कर्मों से बढती लोक विभूति |
जिसकी प्रज्ञा करती निश्चित भूत मात्र की भूति || 9 ||

यद्यपि दिये प्रकृति ने हमको जल-थल दो आवास |
लौट-लौट कर हम आते हैं धरा जननि के पास |
तुम घोषित विवेकधारी हो समझो इसका मोल |
इसे न जानो फल के ऊपर चढा हुआ बस खोल || 10 ||

अवनि अंब को आलिंगित कर रखते अंतर पास |
चरण क्षेप सहती नर के भू क्या पालेगी आस |
रस का पारावार ढूंढते मम शिशु तक नवजात |
नर को बस धातुयें सुखावह होती है प्रतिभात || 11 ||

तुम्हें क्षुब्ध कर देता हमको नहीं कभी लावण्य |
नहीं हमें जगती पर लगते सकल चरा-चर पण्य |
वसु निमग्नता हम में जनती नहीं अनेक विकार |
रत्नाकर में या मिट्टी में रहते एक प्रकार || 12 ||

चिरतक साधे प्राण करण का प्रत्याहार महान |
तब पाया है दीर्घजीविता का अनुपम वरदान |
वहिर्गामिता तुम्हें बनाती व्यग्र विक्षुब्ध अशांत |
नहीं रहा अवगम्य वस्तुत: क्या है तुमको कांत || 13 ||

हम है नित्य श्रवण क्षम तुमको जो अश्रव्य ध्वनि जाल |
रस नितलस्थ प्रशांत जगत में मुदित बिताते काल |
तव सगृध्नुता दृष्टि जगाती भूतांतर संताप |
मम तनु नि: सृत मेद मिटाता अनल जात उत्ताप || 14 ||

हमें बनाया गया उभय चर सकरूण बहुत निसर्ग |
क्यों एकाधिकार वादी है जग में भू चर वर्ग |
धरा जननि क्रोडोत्सुक आते यदि हम बारं बार |
तो क्या नहीं कच्छपों का नैसर्गिक अधिकार || 15 ||

हम से हि सीखा ऋषिगण ने पहले प्रत्याहार |
गुरु सम उसी जीव का मानव अब करता आहार |
जिस निर्घ्रण को वध्य हुए है आज स्वयं के भ्रूण |
क्या विस्मय यदि अंड हमारे विकल रहा है ढूंढ || 16 ||

हैं मृदु अंतरवान हमारा बस आवरण कठोर |
रचना तव विपरीत प्रकृति में भी अंतर है घोर |
उभय दिशा अवलोकन क्षम हम सम्मुख बस तव दृष्टि |
व्यष्टि प्रधान तुम्हारा चिन्तन हमको प्रेय समष्टि || 17 ||

चरण क्षेप सविवेक मन्दगति हम कच्छप है धीर |
त्वराग्रस्त हो चले मनुज तब देखो मनो शरीर |
भीतर रक्षा स्त्रोत तथ्य यह सहज हमें हे ज्ञात |
बाहर तुम खोजते सुरक्षा भटक रहै दिन रात || 18 ||

देने नहीं जनक जननी को लालन-पालन कष्ट |
करते नहीं कर्म से अपने निज आवास विनष्ट |
अब्धि संचरण क्षम पाये है पतवारोपम हाथ |
प्रकृति जननि आश्रय में होती मनुज और ही बात || 19 ||

गहन भवाब्धि संतरण क्षम हैं मित्र हमारे हाथ |
तव कर युगल निमज्जन में ही, अधिक दे रहे साथ |
कृत्रिम कवच कहाँ कर सकते मनुज तुम्हारा त्राण |
अंतर्जात विकार प्रपीणित जब संतत हैं प्राण || 20 ||

बनने चले वारिचर तुम भी किंतु तुम्हें क्या रक्ष्य |
शोषण मोषण या रिपुक्षय ही मात्र तुम्हारे लक्ष्य |
जलनिधि में जब तुम डूबोगे मनुज विना पतवार |
आयुध सकल निरर्थक होंगे पण्य बनेगा भार || 21 ||

बिना हमारे पा सकते थे क्या वे चौदह रत्न |
बिना सुदृढ आधार व्यर्थ हो जाते हैं सब यत्न |
छिली हुई पर पीठ हमारी किसको है अब याद |
सुर को भी विस्मार्य सहायक कार्यसिद्धि के बाद || 22 ||

घर्षण दुस्सह मंदर गिरि का सहा वही यह पृष्ठ |
ओझल हुआ दृष्टि से सत्वर सुर तक रत्नाकृष्ट |
विष उद्भव से देव दनुज ने ही क्या पाया कष्ट |
थोडा घुला वायु में जो था जल में घुला प्रकृष्ट || 23 ||

करके अमित पराक्रम पाये यदि कुछ माया रत्न |
सार्थक होता नहीं वस्तुत: कोई गुरूतर यत्न |
आपीयूष अवाप्ति महोद्यम अल्प फलोदय हेतु |
मात्र सुधा की सिद्धि मनुज की चरमोन्नति का केतु || 24 ||

“मीन न्याय” अव धरणी तल पर ही हो चुका प्ररूढ |
स्रोत स्थल में अर्थ खो चुका शब्द मात्र यह रूढ |
मीनकेतुता त्यागे धर कर नवल केतु कन्दर्प |
मनुज हृदय चिह्नांकित जिसमें बहु वासना विसर्प || 25 ||

तपोजात ऊष्मा तापित हरितनु नि:सृत है |
थल का भी है जनक विश्व जल जो विस्तृत है |
जीवन उद्गम भूमि अत: सच यह जीवन है |
परिपूरित इससे ही सब भूतों का तन है || 26 ||

आश्रय आलय यही यही वपु तत्व प्रदाता |
इससे गहरा हो सकता है क्या कुछ नाता |
लौटाना है इसे द्रव्य जो कुछ है पाया |
प्राकृत ग्रहण विसर्ग विलय पाती है काया || 27 ||

निज विशिष्ट रूपाकृति से हमको अवगत है |
देह मात्र है गेह चेतना से परिगत है |
नरता में यह सत्य जानते कतिपय योगी |
सुख अन्वेषण निरत इतर बहु हैं भव रोगी || 28 ||

काल तुम्हारे लिए त्रिगुण गति से चलता है |
विपुल कर्म समुदाय विविध फल भी फलता है |
निज पर हित अक्षमा बुद्धि की कौन बड़ाई |
अपने ही विरूद्ध क्यों करते मनुज लड़ाई || 29 ||

मम निकेत रत्नेश अतुल रत्नों को ले लो |
गरल सलिल में घोल न जल जीवन से खेलो |
जल भी “विष” संज्ञेय तर्क यह नर मत देना |
श्वेत चूर्ण भी “सुधा” अमरता से क्या लेना || 30 ||
फैलाते तुम तेल स्वास सबकी घुटती है |
नव जीवन के स्वप्न, सकल सुषमा लुटती है |
तुमको बस धन हानि यहाँ जीवन जाता है |
कौन स्वर्ण से पुन: यहाँ जीवन पाता है || 31 ||

वसुधा को मेदिनी बनाना क्या तव यही विकास |
खेचर तक खो रहै स्वस्थ्य गत जीवन में विश्वास |
रत्नाकर को रत्नाकर ही रहने दो तुम मित्र |
सभी तीर्थ जल इसमें आते यह मम धाम पवित्र || 32 ||

स्यात निगूढ कहीं नर उर में है यह अविदित भाव |
नहीं प्रभावित करता उसको भव का भाव अभाव |
किन्तु देह है जब तक संसृति का न छूटता साथ |
उत्पाती शिशु तुम निसर्ग के बनो न इसके नाथ || 33 ||

नर ने जो निसर्ग मंथन कर उपजाया विष घोर |
यह दुरन्त उद्यम क्या ले जा सकता अमृत ओर |
प्रस्तुत है यह कूर्म करो यदि अन्वेषित पीयूष |
पुन: अनघता और अमलता धरे प्रकृति प्रत्यूष || 34 ||

हरि ने सत्कृत किया हमें कर रूपाकृति स्वीकार |
प्रिय वह देह धरेंगे उसको जन्मों तक हर बार |
सुधा सिद्धि में जो वपु आया देव दनुज के काम |
वह प्रिय संतत हमें नहीं हैं काम्य कभी सुरधाम || 35 ||

फिर कच्छप अनंत जीवन में सहसा हुआ प्रविष्ट |
मैं अवाक सा खड़ा हुआ तो ज्यों हो मंत्राविष्ट |
चित्त व्योम में कौंध गया फिर द्रुत उपनिषद विचार |
तित्तिर, हंस, श्रृंखला में क्या यह कच्छप अवतार || 36 ||

शिव कुमार मिश्र

दि. 16/02/2018